भारत में 100 लाख रोजगार प्रति वर्ष कायम करने संबंधी विशेष ग्रुप

B.A Part 2

Paper IV-A

By:-

Dr. Shailesh Kumar

dept. of economics

Raja Singh college Siwan.

लोक वित्त और अर्थव्यवस्था :-

(Public finance & the economy)

केन्स के आने से पहले अर्थशास्त्रियों के अनुसार एक अर्थव्यवस्था को उसके निजी क्षेत्र के मुख्य मानना चाहिए। इस मान्यता के आधार पर उनका निष्कर्ष यह था कि यथासंभव समस्त आर्थिक गतिविधियाँ निजी क्षेत्र में ही रहनी चाहिए। इसी आधार पर यह भी कहा गया है कि एक सुचारु बजटीय नीति- संतुलित बजटों के बिना संभव नहीं होती, इसके अतिरिक्त घाटे के बजटों से सार्वजनिक ऋण की उत्पत्ति होती है। जिसके फलस्वरूप सरकार की भावी बजटीय नीति अनेक प्रकार के प्रतिबंधों से जकड़ी जाती है। ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था की गतिविधियों पर भी अवांछनीय प्रभाव पड़ता है। रिकार्डो (Ricardo) ने तो सार्वजनिक ऋण की निंदा करते हुए यहाँ तक कह दिया था कि यह एक ऐसा रोग है जिससे यथासंभव शीघ्रता से छुटकारा पा लेना चाहिए। सार्वजनिक ऋण का एक दोष यह है कि सरकार को कर राजस्व के संग्रहण की तुलना में उधार लेकर व्यय करना सुविधाजनक प्रतीत होता है। परिणामस्वरूप सरकार अपव्यय और अति व्यय करने लगती है जिससे मांग और कीमतों में बढ़ोतरी होने लगती है। इसी प्रकार अधिशेष वाले बजट की नीति के विरुद्ध यह तर्क दिया जा सकता है कि कर संग्रहण के अधिक होने के कारण मांग घटती है और मंदी कीमतों में गिरावट एवं बेरोजगारी को बढ़ावा मिलता है।

परन्तु कालांतर में यह समझा जाता है

P.T.O

बाजार व्यवस्था का मुक्त संचालन भी दोषरहित नहीं है। उदाहरणार्थ बाजार व्यवस्था में व्यावसायिक चक्रीय उतार चढ़ाव होते हैं जिनकी तीक्ष्णता समय बीतने के साथ-साथ बढ़ती जाती है, बाजार व्यवस्था में आय और धन की वितरणीय असमानताएं न केवल जन्म लेती है. प्रत्युत लगातार बढ़ती भी रहती हैं। इसका एक मुख्य कारण यह है कि इस व्यवस्था में आय के वितरण का आधार समाज के सदस्यों का श्रम अथवा उनकी आवश्यकताएं नहीं होतीं, प्रत्युत हर व्यक्ति की आय इस पर निर्भर करती है कि (क) उसके स्वामित्व में कितने उत्पादन साधन हैं तथा (ख) बाजार में उन साधनों की कीमतें और किराये क्या हैं। इस व्यवस्था में किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा का होना भी जरूरी नहीं है।

इन सब कमियों के कारण निजी क्षेत्र के स्थान पर सार्वजनिक क्षेत्र के अस्तित्व को उचित ठहराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य तर्क भी हैं, उदाहरणार्थ सार्वजनिक और जनहितकारी वस्तुओं की विशेषताओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि इन्हें सार्वजनिक क्षेत्र में होना चाहिए। इसी प्रकार श्रमिक वर्ग के संरक्षण, बेरोजगारी, बिमारी, बुढ़ापे आदि की समस्याएं सरकार को अति लोकप्रिय प्रतीत होती है, सरकार के लिए अर्थव्यवस्था की स्थिरता और माँग के नियमन का महत्व भी कुछ कम नहीं है, इसलिए यह पुरानी धारणा कि सरकार को संतुलित बजटीय नीति का पालन करना चाहिए अब स्वीकार्य नहीं रही। उसका स्थान अब "कार्यात्मक वित्त" functional finance ने ले लिया है। इस नए मतानुसार असंतुलित बजट का अपने आप में कोई औचित्य नहीं है। औचित्य केवल अर्थव्यवस्था की स्थिरता और विकास की गति को बनाए रखने का है। इस लक्ष्य हेतु सरकार सकल प्रभावी माँग में वृद्धि अथवा कमी करने का निर्णय ले सकती है।

" ऐसी स्थिति में बजटीय नीति का अर्थ एक ही बनता है कि इसे संतुलित अथवा असंतुलित रखने का प्रयास छोड़कर इसको आर्थिक और सार्वजनिक नीति का सहायक उपकरण बनाया जाए"

Scanned by CamScanner